AMOGHVARTA

ISSN : 2583-3189

भारत मे सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की अवधारणाः स्वामी दयानंद सरस्वती जी के विशेष सन्दर्भ में

ORIGINAL ARTICLE

Author
विजय दीक्षित
राजनीति विज्ञान विभाग
राजधानी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली, भारत

शोध सार

स्वामी दयानंद सरस्वती का भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। उनका संघर्ष अद्वितीय है जिसके माध्यम से ना केवल समाज में सुधार हुए बल्कि भारत को स्वतंत्रता की प्राप्ति भी हुई। 19वीं शताब्दी के पुर्नजागरण काल में दयानंद सरस्वती का स्थान प्रमुख माना जाता है। उनके मौलिक चिंतन द्वारा भारत में सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, वैचारिक एवं राष्ट्रीय क्रांति उत्पन्न हुई जिसका प्रभाव आज भी हमें दिखाई देता है। उनके विचार जिनमें स्वदेशी, सुशासन, स्वराज, देशभक्ति, राष्ट्रीयता, स्वभाषा, वैश्विक सहानुभूति, सत्य के प्रति आग्रह, लोकतांत्रिक प्रणाली, समानता, न्याय, शैक्षणिक परिवर्तन, दलितों और महिलाओं की स्थिति में सुधार, जाति प्रथा का निर्मूलन आदि विषयों पर उनके विचारों ने उस समय के भारतीय समाज में संजीवनी बूटी का काम किया। उस समय के समाज में परिवर्तन लाने के लिए दयानंद सरस्वती जी ने 10 अप्रैल 1875 में आर्य समाज की स्थापना की। स्वामी दयानंद सरस्वती जी के विचारों का प्रेरणा स्त्रोत मौलिक रहा है जिसमें वेद प्रमुख है। दयानंद सरस्वती जी के विचार ना सिर्फ 19वीं शताब्दी में प्रासंगिक थे, बल्कि आज भी उनके विचारों का उतना ही महत्व है। सरस्वती जी के विचारों से प्रेरणा पाकर योगी अरबिंदो घोष, लाला लाजपत राय एवं अन्य चिंतकों ने अपने विचार प्रस्तुत किए। वर्तमान परिस्थिति में यदि हम देखें तो भारत को 1947 में राष्ट्रीय स्वतंत्रता की प्राप्ति हो चुकी है किंतु सांस्कृतिक स्वतंत्रता जो अभी धूमिल है, उसको प्राप्त करना बाकी है एवं उसके प्राप्ति के लिए दयानंद सरस्वती के विचार बेहद प्रमुख हैं। उन्होंने अपने विचारों का दर्शन अपनी कृति सत्यार्थप्रकाश में प्रस्तुत किए। दयानंद सरस्वती एक मानवतावादी चिंतक हैं , विश्व शांति के नायक हैं, सांप्रदायिक सद्भावना के उन्नायक, सामाजिक व समाजवादी मूल्यों के प्रवक्ता हैं एवं शोषण के विरुद्ध संघर्ष करने वाले महान व्यक्ति हैं।

मुख्य शब्द

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, आर्य समाज, वैदिक मूल्य, राष्ट्रीय एकता, स्वतंत्रता.

वी.पी. वर्मा के अनुसार दयानंद सरस्वती जी का कथन था कि संसार अज्ञानता एवं अंधविश्वास की बेड़ियों में जकड़ा हुआ है और मैं उन बेड़ियो को तोड़ने और दासों को मुक्त करने के लिए आया हूं। उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवाद की आलोचना की एवं उन्होंने व्यक्ति को सर्वोच्च एवं प्रमुख माना। वह एक नैतिक आदर्शवादी चिंतक थे। हालांकि दयानंद सरस्वती जी ने राजनीतिक दर्शन पर कोई व्यवस्थित रचना नहीं की वह फिर भी भारतीय चिंतन में प्रमुख स्थान पाने के अधिकारी रहे हैं। उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय स्वतंत्रता की नींव तैयार करने का काम किया।

उन्होंने हिंदी भाषा में वेदभाष्य लिखे, दलितों और महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने के लिए कार्य किए स्वदेशी शिक्षा पर अत्याधिक बल दिया। इन सभी सामूहिक प्रयासों से समाज में एक नई शक्ति एवं ऊर्जा का संचार हुआ। जिस समय ब्रिटिश साम्राज्य भारत में अपनी एक मजबूत नींव तैयार कर चुका था उस समय दयानंद सरस्वती जी ने अपने विचार प्रस्तुत करके स्वराज का गौरव गान किया।

दयानन्द सरस्वती का जीवन परिचय

दयानंद सरस्वती जी का जन्म 12 फरवरी 1824 में गुजरात के टंकारा में ब्राह्मण परिवार में हुआ। उनके पिताजी का नाम करसन जी लालजी तिवारी था, उनकी माता का नाम अमृत बेन था। दयानंद जी के बचपन का नाम मूलशंकर, मूलजी एवं दयाराम था। बाल्यावस्था में मूलशंकर जी के जीवन में कुछ अद्भुत घटनाएं घटी जिससे ना केवल उनके मानसिक दशा में बदलाव आया बल्कि इन घटनाओं ने मूल शंकर के भविष्य के विचारों की रूपरेखा तैयार करने में प्रमुख भूमिका निभाई एवं नींव तैयार करी जिसमे एक घटना शिवरात्रि के पर्व की है जहां शिवजी की मूर्ति को चूहे द्वारा की गई अवज्ञा की घटना से है। यह घटना बेहद साधारण है किंतु मूलशंकर के विचारों में इस घटना ने अमिट छाप छोड़ी एवं मूर्ति पूजा के प्रति उनकी आस्था को पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया। जब वह 16 वर्ष के हुए तो उनके चाचा का देहांत हो गया इसका भी उनके जीवन में प्रभाव पड़ा। उनका मानना था जो जीव आया है उसका अंत निश्चित है और हमको कुछ ऐसे उपाय करने चाहिए जिससे हमारे दुख कम हो और हम को मुक्ति की प्राप्ति हो। इसी समय से ही स्वामी जी ने अपना गृह त्याग किया एवं संत और वैराग्य का जीवन शुरू किया। यह दयानंद जी का प्रारंभिक जीवन था जहां से उनके विचारों ने अपना स्वरूप लेना प्रारम्भ किया और भविष्य के उनके महान कार्य की नींव रखी।

गुरु शिष्य परम्परा, शिक्षा एवं दयानन्द के चिंतन का विकास

स्वामी दयानंद सरस्वती जी की शिक्षा गुरु विरजानंद के समक्ष दो–तीन वर्ष रही थी। इसी दौरान कुछ ऐसी घटनाएं घटी जिन्होंने गुरु शिष्य परंपरा में निकटता, आत्मीयता एवं इनके संबंधों के पारस्परिक स्नेह का विवरण किया। गुरुजी के लिए ताजा जल लेने के लिए दयानंद जी नदी तट पर जाकर ताजा जल स्वयं लेकर आते थे। गुरु विरजानंद नेत्रहीन एवं वृद्ध थे जिसकी वजह से उनके स्वभाव में अकारण कठोरता थी। एक बार की घटना है जब गुरु विरजानंद ने अकारण दयानंद सरस्वती जी को मार बैठे। दयानंद जी के वज्र व कठोर शरीर पर यह निशान अमिट हो गए किंतु फिर भी उन्होंने अपने गुरु जी से कहा की गुरुजी आप मुझे मारा ना करें, मेरा शरीर तो पत्थर के समान है आपके मारने से आपके कोमल हाथों को ही पीड़ा होगी।

दूसरी घटना जिसमें भवानीलाल भारती अपनी कृति में बताते हैं कि दयानंद सरस्वती जी की स्मरण शक्ति अद्भुत थी और वह एक बार में ही सुनकर अपने पाठ को स्मरण कर लिया करते थे। किंतु एक बार की बात है वह गुरु विरजानंद के द्वारा बताई गई अष्टाध्यायी की प्रयोगसिद्धि स्मरण में नही रख पाए और गुरुजी से दोबारा पूछने गए किंतु कठोर अनुशासन एवं स्वभाव वाले गुरुजी ने दोबारा बताने से मना कर दिया साथ में उन्हें यह भी कहा की जब तक तुम्हें यह पुनः स्मरण ना हो जाए मेरे पास मत आना चाहे यमुना में डूब जाना। दृढ संकल्पित दयानंद सरस्वती जी यमुना तट पर जा कर बैठे और संकल्प लिया या तो उन्हें पुनः स्मरण शक्ति हो जाए अन्यथा वह यमुना में कूद गए जल समाधि ले लेंगे। हालांकि कुछ समय बाद उन्हें प्रयोग सिद्धि पुनःस्मृत हो गई। यह कुछ उदाहरण है जहां यह देख सकते हैं कि भारतीय प्राचीन चिंतन में गुरु शिष्य की जो परंपरा है वह कितनी महत्वपूर्ण रही है और गुरु शिष्य का जो प्रेम है वह अविश्वसनीय और इसमें कितना स्नेह और आत्मीयता रही है। अंत में जब दयानंद सरस्वती जी की शिक्षा समाप्त होती है और गुरु विरजानंद से विदा लेने का समय आता है तो गुरु जी को दक्षिणा देनी थी। दयानंद सरस्वती जी के पास ऐसा कुछ था नहीं जिससे गुरु जी को दक्षिणा देकर वह अपना कर्ज उतार सकें किंतु दक्षिणा तो देनी ही थी। दयानंद सरस्वती जी को यह मालूम था कि गुरु जी को लौंग अति प्रिय है और वह कहीं से जाकर आधा से लौंग का इंतजाम कर लें आये और गुरु जी के चरणो में चढ़ कर बोले गुरु जी मुझे आशीर्वाद दीजिए और इसे स्वीकार कीजिए। गुरुजी भले ही नेत्रहीन थे किंतु इस दृश्य को

भली–भांति समझ पा रहे थे। उन्होंने दयानंद सरस्वती जी से कहा बेटा तुम इस तुच्छ सी चीज से मेरा कर्ज़ उतारना चाहते हो। मैं तो तुमसे इससे भी कहीं अधिक की अपेक्षा कर रहा था। मैं दक्षिणा में तुमसे इससे भी ज्यादा मांगना चाहता हूं और मैं तुम्हारा जीवन चाहता हूँ। तुम अपना जीवन संपूर्ण भारत के सांप्रदायिक आचार–विचार, अंधविश्वास के शिकार हो रहे समाज में एक ज्योति के रूप में काम करो और समाज में जो अंधकार छाया है उसको दूर करो। आर्य ज्ञान का प्रचार–प्रसार करो और वैदिक मूल्यों को बढ़ावा दो। दयानंद उठो और सांप्रदायिक पाखंड को समाप्त करो और अज्ञानता को दूर करो, यही मेरी दक्षिणा है। गुरु जी के यह विचार दयानंद सरस्वती जी के लिए पत्थर की लकीर की तरह बन गए और उनके भविष्य के चिंतन की रूपरेखा एवं नींव के रूप में काम किये।

दयानन्द सरस्वती के द्वारा भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद

भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की अवधारणा प्रमुख रही है। राष्ट्रवाद एवं उसका महत्व केवल राजनीति के दायरे तक ही सीमित नही है। यह विश्व के राष्ट्रो के लिए बौद्धिक एवं सांस्कृतिक समझ भी है। राष्ट्रवाद एवं राष्ट्र की अवधारणा आज बहुत विचरित है। इस अवधारणा ने बुद्धिजीवी, लेखकों, इतिहासकारों, दार्शनिकों, राजनीतिज्ञ एवं राजनीतिक विचारकों को अपनी ओर आकर्षित किया है जिसके पास राष्ट्रवाद को परिभाषित करने के लिए अपनी समझ है। पश्चिमी देशों में भाषा नस्ल भौगोलिक सीमा को अपने राष्ट्रवाद के आधार के रूप में लिया है जिसकी उत्पत्ति संघर्षों का परिणाम है। भारतीय संदर्भ में इस अवधारणा को अधिक समावेशी और व्यापक आधार में देखा गया है और यह आधार संस्कृति से जुड़ा हुआ है। यह संस्कृति भारत के लोगों को एक साथ जोड़ती है। भारत में राष्ट्रवाद की अवधारणा वैदिक समय से विद्यमान रही है जो जीवन के साझा दृष्टिकोण पर आधारित है। स्वामी दयानंद सरस्वती इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि यह भारतीय दर्शन को पुनः जानने अवगत कराने का एक मौका प्रदान करते हैं। वर्तमान समय में एकेडमिक्स जगत में राष्ट्र, राज्य, राष्ट्रवाद, राष्ट्रीयभाव इसकी उत्पत्ति पर विचार विमर्श लगातार चल रहे हैं। भारतीय इतिहास में 19वीं सदी काफी महत्वपूर्ण रही है जहां एक तरफ सामाजिक और सांस्कृतिक पतन की एक उल्लेखनीय प्रवर्ति देखी गई तो वहीं दूसरी ओर इस निरंतर हो रहे पतन को रोकने के लिए सामाजिक सांस्कृतिक पुनर्जागरण की ओर एक मजबूत प्रयास देखा गया। स्वामी दयानंद सरस्वती एवं आर्य समाज द्वारा इस सामाजिक धार्मिक बुराई को हटाने के लिए काफी कड़े प्रयास किए गए। दयानंद सरस्वती एवं आर्य समाजों के प्रयास से धार्मिक और सामाजिक कुरीतियों को उखाड़ फेंकना एवं इससे लोगों के जीवन में क्या परिणाम हुए उसको जानने में एवं आधुनिक भारत मे इसके महत्व को बताता है। 1947 में भारत को राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त हुई किंतु सांस्कृतिक एवं वैचारिक स्वाधीनता अभी भी उलझी हुई थी। यदि वास्तविक रूप में हमें यह इससे इस काम को पूरा करना है तो दयानंद जी के विचार हमारे लिए महत्वपूर्ण होंगे। हम इसकी उपेक्षा करके आगे नहीं बढ़ सकते है।

अर्नेस्ट गैलनर एवं बेनेडिक्ट एंडर्सन राष्ट्रवाद पर अपने सिद्धांत प्रस्तुत करते हैं। गैलनर ने राष्ट्रीय राज्यों के बीच ऐतिहासिक अनुक्रम के आधार पर शुरुआती दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। एंडरसन एक कल्पनावादी समुदाय के रूप में राष्ट्र की अवधारणा देते हैं। गेलनेर का सिद्धांत भारतीय राष्ट्रवादी भावनाओं की उत्पत्ति को समझने में अक्षम है। सुदिप्ता कविराज का दृष्टिकोण राष्ट्रीय राज्यों के लिए आंखें खोलने वाला हो सकता है, वह लिखते हैं कि यूरोपीय शक्तियों ने ऐसे सीमित प्रतिनिधि संस्थानों की शुरुआत की। सैद्धांतिक रूप से भारतीय राष्ट्रवाद के बारे में सोचने के लिए हमें जो पश्चिमी समझ मिलती है वह सीमित है, पर्याप्त नहीं है। एंथोनी स्मिथ दो प्रकार के राष्ट्रवाद की बात की हैः प्रथम एथनोसेंट्रिक एवं दूसरा पॉलीसेंट्रिक। यह दोनों ही एक दूसरे के मौलिक रूप से विरोधी रहे हैं जो ज्ञान सौंदर्य पवित्रता और संस्कृति का आधार है। एनी बेसेंट ने अपनी पुस्तक हाउ इंडिया फॉरगेट फॉर फ्रीडम में यह बताती हैं कि भारतीय राष्ट्रवाद चेतना का उत्पाद है जो अपनी प्राचीन अतीत की गहराई से अंतर्निहित है। थॉमस कोहेन ने अपनी पुस्तक द आइडिया ऑफ नेशनलिज्म में राष्ट्रवाद के विचार की व्याख्या करते हुए कहा कि यह भावना मनुष्य की कुछ सबसे पुरानी और सबसे आदिम भावना से निकल कर आई है जिसका जन्म स्थान के प्रति प्रेम अपनी भाषा संस्कृति के प्रति लगाव से है। वह इस तथ्य से इंकार नहीं करते कि राष्ट्रवाद की जड़ इतिहास में हैं, वह सर्वोच्च निष्ठा को प्रधानता देते हैं और यह सर्वोच्च निष्ठा राष्ट्र राज्य के लिए है।

1772 में ईस्ट इंडिया कंपनी शासन के शासन के दौरान वारेन हेस्टिंग बंगाल में डायरेक्टर की मीटिंग में कहते हैं कि अगर हमें भारत के ऊपर शासन करना है तो हमें इसकी संस्कृति सभ्यता के मानक मूल्यों के आधार पर ही शासन करना होगा। वे यह कहना चाहते हैं कि भारत की संस्कृति एवं सभ्यता हजारों वर्षों की सभ्यता है। अगर इस भारतीय समाज को हमें शासित करना है तो इन्हीं के मानदंडों के अनुसार शासन करना होगा। 1773 में रेगुलेटिंग एक्ट आता है इसके बाद एशियाटिक सोसाइटी बनती है जिसका कार्य भारत के तमाम आदि ग्रंथों की व्याख्या करके यूरोप भेजना था। उन के माध्यम से भारतीय समाज को जानने पहचानने की एक प्रक्रिया शुरू होती है। व्याख्या करने का मूल उद्देश्य भारत को जानना था लेकिन बीच में कुछ ऐसी घटनाएं घटी इसने भारत की चिंतन प्रक्रिया को ही बदल दिया। 1835 में मैकौले मिनट के माध्यम से अंग्रेजी शिक्षा तंत्र भारत में शुरू किया जाता है उन्होंने एक सीमित समय में भारत की शिक्षा पद्धति को बदल दिया, भारत की चिंतन प्रक्रिया को बदल दिया, भारत के नीति निर्माताओं की प्रक्रिया को भी उन्होंने प्रभावित किया और सम्पूर्ण चिंतन राज्य केंद्रित एवं प्रशासन केंद्रित हो गया। रोनाल्ड ईडन, मेटकॉफ, लॉर्ड मैकाले मैक्समूलर के लेख के माध्यम से हम यह देखते हैं कि भारतीय सभ्यता को समझने के लिए इंडोलॉजी अपनाई गई। इस प्रक्रिया में भी विकृति थी। डी.डी. पटनायक अपनी कृति में लिखते हैं कि ज्यादातर इंडोलॉजिस्ट क्रिस्चियन यूरोपियन श्रेष्ठता के नकारात्मक मनोविज्ञान से ग्रस्त हैं और भारतीय राष्ट्र राज्य में एक औपनिवेशिक अभिविन्यास लगाने की आमदा है।

स्वामी दयानंद सरस्वती जी के विचार हमें पूर्ण रूप से उनकी कृति सत्यार्थ प्रकाश में वर्णित होते हैं। यह उनके दार्शनिक विचार हैं, यह कृति 14 अध्यायों में विभाजित है। इसमे उन्होंने वैदिक जीवन के ऐतिहासिक सैद्धांतिक एवं नैतिक पहलुओं का वर्णन किया है। इस पुस्तक ने सुधार के उनके संदेश के कुल योग को अपनाया जो हिंदुओं को जीवन के अनुभव के उच्च स्तर तक ले जाने के लिए था। अपने समय में प्रचलित मानव समाज की स्थितियों ने दयानंद को वर्तमान परिस्थिति की प्रतिक्रिया करने का कारण बनाया। दयानंद सरस्वती जी के अनुसार भारत में विदेशी शासन के कारण आपसी झगडे धर्म में मतभेद, वैदिक शिक्षा की कमी, बाल विवाह, वैदिक शिक्षा की उपेक्षा और अन्य के प्रभाव का अध्ययन। ऐसी परिस्थिति तभी होता है जब दो भाई आपस में लड़ते हैं एवं मध्यस्थता एक बाहरी तीसरा व्यक्ति करवाता है। इस पुस्तक का नाम इस मायने में महत्वपूर्ण है क्योंकि यह स्वामी जी के दिमाग में विचारों को प्रकाश में लाता है। दयानंद जी के अनुसार इस पुस्तक को लिखने में मेरा मुख्य उद्देश्य सत्य को प्रकट करना है मैंने सत्य को सत्य और अज्ञान को अज्ञान के रूप में उजागर किया है सत्य के स्थान पर अज्ञान का अवतरण, अज्ञान के स्थान पर सत्य का होना सत्य का गठन नहीं करता है।

आर्य समाज की स्थापना एवं उद्देश्य

1875 में बॉम्बे में आर्य समाज की स्थापना एक ट्रस्ट के रूप में नहीं बल्कि एक विशेष, संवैधानिक विनियमित सामाजिक–धार्मिक संगठन के रूप में की गई थी जिसका उद्देश्य स्वामी दयानंद सरस्वती (1824–1883) द्वारा वैदिक धर्म की स्थापना, रक्षा और प्रचार करना था। एक पक्षधर के रूप में, दयानंद जी ने न केवल हिंदू धर्म बल्कि ईसाई धर्म और इस्लाम की विभिन्न प्रणालियों की भी निंदा की और सभी धर्मों के भारतीयों द्वारा राष्ट्रीय धर्म के रूप में स्वीकार किए जाने के लिए वैदिक धर्म को स्थापित करने का प्रयास किया। उन्होंने पश्चिमीकरण और ब्रह्म समाज आंदोलन के खिलाफ विरोध किया। उनका एक मिशन था जो एक समय में देशभक्ति, रूढ़िवादी, प्रकृतिवादी और पुनरुत्थानवादी पर आधारित था। परिणामस्वरूप आर्य समाज एक शुद्धतावादी, अत्यधिक उग्रवादी आंदोलन के रूप में विकसित हुआ जिसने योग्य अद्वैतवाद का समर्थन किया। 19 वी सदी में भारतीय चिंतको का एक नया जोर और एक नया महत्व, इस्लाम और ईसाई धर्म को संशोधित करने और सुधार की वकालत सामाजिक जीवन के ऐसे क्षेत्र जो ईसाई मिशनरियों–अर्थात् बाल विवाह, अस्पृश्यता, मूर्तिपूजा और बहुदेववाद के हमले के कमजोर बिंदु थे। इसकी विशिष्टता वैदिक शास्त्रों में सभी सुधार, पवित्र और धर्मनिरपेक्षता को आधार बनाते हुए हुई, लेकिन इसने कानून के माध्यम से सामाजिक सुधार की भी मांग की, उदाहरण के लिए, 1929 का बाल विवाह निषेध अधिनियम, 1937 का आर्य विवाह वैधता अधिनियम और नाइक गर्ल्स प्रोटेक्शन। 1928.में आर्य समाज के अधिनियम ने सामाजिक–आर्थिक पुनर्वास के लिए एक कार्यक्रम विकसित किया, जिसमें स्कूलों, सहकारी समितियों के संगठन शामिल थे, जो गाँव

के कुँओं से पानी खींचने के लिए सभी के अधिकार की मांग कर रहे थे और देहात में उन लोगों के लिए निवारण प्राप्त कर रहे थे। पुनर्वास गांधीवाद के समर्थक ग्राम और आदिवासी उत्थान के अग्रदूत थे। कर्म का सिद्धांत संयुक्त है दयानंद जी के शिक्षण में हालाँकि यह सिखाया गया कि ''स्व–सरकार विदेशी सरकार से बेहतर है और अच्छी अच्छी है'' और स्वधर्म (किसी का अपना धर्म), स्वराज (किसी का अपना शासन), स्वदेशी (अपने देश का) और स्वभाषा (किसी की अपनी भाषा) पर भी जोर दिया और हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रस्तुत किया। रामधारी सिंह दिनकर के अनुसार सत्यार्थप्रकश के एकादश अध्याय में स्वामी दयानन्द ने आर्य समाज को ब्रह्मसमाज एवं प्रार्थना समाज से अलग किया। ब्रह्मसमाज एवं प्रार्थना समाज ने भारत में सामाजिक, धार्मिक सुधार तो किये किन्तु यह ईसाई मत एवं पश्चिमी दृष्टिकोण पर आधारित था। स्वदेशी भक्ति इसमें बहुत न्यून थी। उन्होंने जो भी भारत में किया वह पश्चिम की नक़ल थी तो वही दयानन्द जी ने रूढ़ियों में फसकर अपना विनाश करने के कारण भारतवासियो की कड़ी निंदा की। उन्होंने कहा की तुम्हारा धरम पौराणिक संस्कारो की धूल में छिप गया है इन संस्कारो की गंदगी को तोड़ फेको, तुम्हारा सच्चा धर्म वैदिक धर्म है जिसे प्राप्त करके पुनः तुम्हे विश्वविजयी होना है। इस प्रकार उन्होंने आर्य समाज को अन्य आंदोलन से अलग किया एवं सांस्कृतिक राष्ट्रवाद पर अपने विचार प्रस्तुत किये।

स्वामी दयानद सरस्वती जी के राजनीतिक विचार

उन्नीसवीं सदी के भारत का अध्ययन और स्वतंत्रता का संघर्ष स्वामी दयानंद के सामाजिक–धार्मिक और राजनीतिक विचारों के उचित मूल्यांकन के बिना पूरा नहीं हो सकता। वह आधुनिक भारत के प्रमुख वास्तुकार और उग्रवादी राष्ट्रवाद के जनक में से एक थे। पश्चिमी प्रभाव से पूरी तरह मुक्त और वैदिक अतीत की श्रेष्ठता के दृढ़ प्रतिज्ञा, स्वामीजी ने न केवल धार्मिक और सामाजिक बुराइयों से, बल्कि राजनीतिक रूप से स्वतंत्र, और एक राष्ट्रीय सरकार के साथ, एक मुक्त भारत का निर्माण करने की कोशिश की। वह 'स्वराज' और 'स्वदेशी' के लिए खड़े हुए थे। उनकी अपील थी कि 'वेदों' में वापस जाएं। स्वामीजी व्यापक रूप से एक सामाजिक और धार्मिक उपदेशक के रूप में जाने जाते हैं लेकिन कुछ ने उनके भाषणों, लेखों और वेदों और मनुस्मृति की उनकी व्याख्या में छिपे हुए उनके राजनीतिक विचारों की विशालता का पता लगाने की कोशिश की है। इनमें से एक उचित अध्ययन से स्वामीजी की इस विषय की समझ, उनकी मौलिकता और गहराई और मन के लोकतांत्रिक झुकाव का पता चलता है। स्वामी दयानंदजी ने वैदिक शास्त्रों के आधार पर सरकार से लोकतांत्रिक की परिकल्पना की। राज्य की मशीनरी में एक राजा और तीन सभाएँ होती हैं। वे संयुक्त रूप से लोगों की ओर से और लोगों की सहमति से संप्रभुता का प्रयोग करते हैं। दयानंद जी की सरकार की योजना में, धर्म, जनता की राय और विधानसभाओं का बहुत महत्व है और वे राजा की शक्ति पर एक काम करते हैं। ये शाही शक्ति पर लगाए गए नियंत्रण और सीमा भी हैं। राजा को धर्म, सार्वजनिक मत और कानून के अनुसार अपने अधिकार का प्रयोग करना होता है, जो लोगों द्वारा चुनी गई विधानसभाओं द्वारा तैयार किया जाता है। धर्म एक शाश्वत नियम है, जो राज्य और सरकार से श्रेष्ठ और स्वतंत्र है, सभी इसके अधीन हैं और इसका पालन करना चाहिए। दयानंदजी के अनुसार धर्म सामाजिक और राजनीतिक संगठन का आधार है। यह शासक की शक्ति को सीमित और नियंत्रित करता है। बी. आर. पुरोहित के अनुसार स्वामी दयानंद सरस्वती जी का स्थान भारतीय दर्शन में महत्वपूर्ण रहा है। 19वीं शताब्दी के प्रारंभ में वे भारत में हुए सामाजिक एवं धार्मिक सुधार आंदोलनों के मुख्य नायक एवं वास्तुकार थे। स्वामी जी ने भारतीय समाज की कुरीति, रीति–रिवाजों, अंधविश्वास, रूढ़िवादिता और मूर्ति पूजा से मुक्ति कराने की कोशिश की। उन्होंने जाति व्यवस्था की समाप्ति के लिए काम किया और एक नए सामाजिक व्यवस्था का आधार रखा। आगे वह कहते हैं की दयानंद सरस्वती जी आधुनिक भारत के मुख्य निर्माताओं में से एक थे। उन्होंने सामाजिक न्याय, सामाजिक एकीकरण, राष्ट्रीय एकता पर विचार प्रस्तुत किए और वैदिक मूल्य पर आधारित राष्ट्रीय शिक्षा की नीति पर उन्होंने बल दिया। उनके द्वारा किए गए सुधार 19वीं शताब्दी में भारत के रचनात्मक सामाजिक राजनीतिक चेतना का आधार है। वह मानते हैं की दयानंद सरस्वती जी के जो विचार हैं वह मानवतावादी दर्शन पर आधारित हैं।

दयानन्द सरस्वती जी और वैदिक मूल्यों में विश्वास

स्वामी दयानंद सरस्वती के वेदों और अन्य शास्त्रों के गहन अध्ययन ने उन्हें ब्रिटिश शासन के अनैतिक शासन को मानने से इंकार कर दिया और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 1906 में इस आदर्श को स्वीकार करने से पहले दयानन्द सरस्वती ने स्वराज की माँग की। वह यही थे जिन्होंने ''स्वदेशी'' का नारा बुलंद किया जो बाद मे काफी लोकप्रिय हुआ और महात्मा गांधी के एक शक्तिशाली हथियार के रूप में उभर कर आया। उन्होंने उन भारतीयों को जागृत किया जिनके पास विदेशी वस्तुओं और कपड़ों के लिए आकर्षण था। उन्होंने कहा कि भारतीयों को अपनी पोशाक, भोजन और संस्कृति पर गर्व करना चाहिए और उन अंग्रेजों की नकल नहीं करनी चाहिए। स्वदेशी की अवधारणा ने भारतीयों में एक नई चेतना पैदा की। वह यह घोषणा करने वाले पहले भारतीय भी थे कि 'स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।' दयानंद के अनुसार भारतीय राष्ट्रवाद की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता वैदिक मूल्यों के आधार पर इसका अभिविन्यास है जो भारत में सभी सामाजिक–धार्मिक विचारों के केंद्रीय विषय का गठन करता है। धर्म प्राचीन काल में भारतीय राष्ट्रवाद का एकमात्र वैचारिक आधार था। इस प्रकार दयानंद ने आध्यात्मवाद पर आधारित राष्ट्रवाद के एक सिद्धांत का प्रचार किया और भौतिक समृद्धि के बजाय नैतिक और मानसिक सुधार पर जोर दिया। अपने नए राष्ट्रवाद की मदद से वह उन लोगों के चरित्र और स्वाद को बदलना चाहते थे, जो घोर भौतिकवादी पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति के प्रभाव के कारण पतित हो गए थे। दयानंद के नए आध्यात्मिक राष्ट्रवाद के प्रभाव के परिणामस्वरूप भारतीयों ने भारत की संस्कृति और बौद्धिक विरासत पर गर्व करना शुरू कर दिया।

दयानन्द जी के विचारो का प्रभाव

आर्य समाज आंदोलन ने ब्रिटिश राज के खिलाफ राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन की पृष्ठभूमि को प्रभावी और प्रशस्त किया। भारतीयों ने पहली बार ब्रिटिश क्राउन से डोमिनियन स्टेटस की मांग की, लेकिन बाद में इस मांग को पूर्ण स्वतंत्रता (स्वराज) के विदेशी नियंत्रण की मांग में बदल दिया गया। उदारवादी नेता डोमिनियन स्टेटस के पक्ष में थे, लेकिन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अतिवादी नेताओं ने ब्रिटिश संप्रभु से 'स्वराज' को पूरा करने की मांग की। बाल गंगाधर तिलक ने कहा कि स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूँगा। स्वामी दयानंद सरस्वती और अन्य के लेखन में चरमपंथी नेताओं के राजनीतिक दर्शन का मूल था। लाला लाजपत राय, स्वामी शारदानंद, पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी, आदि जैसे प्रमुख आर्य समाज के नेता थे जो स्वामी दयानन्द सरस्वती विचारो से प्रेरित हुए और राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लिया। उन्होंने कुछ वर्षों के लिए राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन का नेतृत्व किया और प्रभावित किया। इन सभी गतिविधियों में, दयानंद द्वारा लिखित सत्यार्थ प्रकाश ने एक महत्वपूर्ण स्थान रखा। पुस्तक को ''भारतीय राष्ट्रीय स्वतंत्रता की बाइबिल'' कहा जा सकता है। राष्ट्रवाद की जड़ सत्यार्थ प्रकाश में पायी जाती हैं। सर वेलेंटाइन चिरोल, टाइम्स के एक विशेष संवाददाता, (लंदन), जिन्होंने 1907–1910 में भारत का दौरा किया, ने आर्य समाज पर देश में ब्रिटिश विरोधी आंदोलन का नेतृत्व करने का आरोप लगाया। प्रमुख आर्य समाज के नेताओं को निर्वासन में भेजने की कोशिश की गई।

निष्कर्ष

स्वामी दयानंद सरस्वती के महान व्यक्तित्व और कृतित्व ने 19वीं शताब्दी के पराधीन और अनेकों बुराइयों से ग्रस्त भारतीय समाज को गहराई तक झकझोरा है। उनके विचारों का प्रभाव हम 21वीं शताब्दी में भी देख रहे हैं और उनके विचारों से प्रेरणा पाकर समाज में फैली अनेक प्रकार की सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक अंधविश्वासों, अन्याय, असमानता आदि अनेकों समस्याओं से का सामना कर रहे हैं। यह वह समस्याएं हैं जो समाज और धर्म दोनों को ही भीतर ही भीतर खोखला कर रही हैं। स्वामी दयानंद सरस्वती जी ने धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, दार्शनिक, राजनीतिक, आध्यात्मिक सभी प्रकार से भारतीय समाज का अध्ययन किया। रोग के अनुसार ही उन्होंने समाज का उपचार किया। उस समय तक ऐसा संपूर्ण प्रयास किसी भी समकालीन सुधारक ने नहीं किया था। दयानंद सरस्वती जी आज भी वर्तमान समय में उतने ही प्रासंगिक हैं। उन्होंने न सिर्फ भारतीय समाज के सुधार में भूमिका अदा की साथ ही भारत की स्वतंत्रता के लिए विचार एवं प्रेरणा का काम किया एवं भारत में सांस्कृतिक

राष्ट्रवाद की नींव तैयार की। दयानंद सरस्वती जी ने सर्वप्रथम स्वदेशी की बात करी। अनेकों ऐसे चिंतक हैं जिन्होंने दयानंद सरस्वती जी के विचारों से प्रेरणा पाकर भारतीय समाज के विकास के लिए काम किया, इनमें से प्रमुख हैं लाला लाजपत राय, अरबिंदो घोष आदि। आज भी वर्तमान समय में भारतीय समाज में अनेक को ऐसी समस्याएं हैं जिनके समाधान के लिए आवश्यक है कि हम दयानंद सरस्वती जी के विचारों से प्रेरणा लेकर आगे बढ़े। दयानंद सरस्वती जी के का दर्शन हमें उनकी कृति सत्यार्थ प्रकाश में मिलता है। भारत 1947 तक आते–आते ब्रिटिश साम्राज्य का भारत से अंत हुआ। यह केवल राजनीतिक स्वाधीनता थी, सांस्कृतिक एवं वैचारिक स्वाधीनता अभी उलझी हुई है। यदि वास्तव में हमें शेष कार्य को पूरा करना है तो दयानंद सरस्वती जी के विचार हमारे लिए बहुत महत्वपूर्ण रहेंगे, इनकी उपेक्षा करके हम आगे नहीं बढ़ सकते।

सन्दर्भ सूची

1. Bawa Arjan Singh, *Dayananda Saraswati,* Founder of Arya Samaj, Published by Ess Ess Publications, 1979
2. Bharti, Bhawanilal. *Navjgaran ke Purodha,* Arya Dharmnath Nyas.
3. Garg, ganga ram (1984). *World Perspectives on Swami Dayananda Saraswati.* Concept Publishing Company
4. Jordens. (1998). *Dayananda Sarasvati : essays on his life and ideas*. Ajay Kumar Jain For, Manohar.
5. Rolland, R. (2015). *Dayanand and arya samaj*. Pandit Lekrham Vedic Mission.
6. Saraswati, D. (1893). *The Beliefs of Swami Dayanand Saraswati as Given in His,* Satyarth Prakash.
7. Saraswati,D. (1917). *Sayings and Precepts of Swami Dayanand Saraswati.*
8. Saraswati,D. (2014) Satyarth Prakash. Indian Foundation for Vedic Science.
9. Sinhal, Meenu (2009). *Swami Dayanand Saraswati.* Prabhat Prakashan
10. The philosophy of religion in India, Delhi : Bharatiya Kala Prakashan, 2005
11. Yadav, K. C. (1995c). *Autobiography of Dayanand Saraswati.*

——==00==——